महाभोज

मन्नू भंडारी (1982) राधाकृष्ण प्रकाशन

'महाभोज' उपन्यास का उद्देश्य, 'महाभोज' उपन्यास का शीर्षक की सार्थकता, 'महाभोज' उपन्यास का राजनीतिक चित्रण, 'महाभोज' उपन्यास का विशेषता

मन्नू भंडारी कृत 'महाभोज' उपन्यास स्वाधीनता के बाद लिखी गई एक यथार्थवादी उपन्यास है। स्वाधीन भारत की राजनीतिक चेतना की पतनोन्मुखता इस उपन्यास का मुख्य विषय–वस्तु है। सन् 50 के बाद देश की राजनीति किसी दर्शन या आदर्श से हटकर सत्ता केन्द्रीत हो गई। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद सबसे त्रासद स्थिति यह रही कि आजादी के बाद भी देश का संचालन अंग्रेजो के द्वारा बनाई गई नीति के द्वारा ही होता रहा। फलस्वरुप देश की आजादी नाम मात्र की रह गई और पूरे देश में शोषण और आजकता का साम्राज्य फैल गया। आजादी के लिए अंग्रेजों से संघर्ष करना एक बात है मगर देश को सुखी सम्पन्न बनाने के लिए सुंदर व्यवस्था देना दूसरी बात है। स्वाधीनता सेनानियों में अधिकांश में यह दूसरी दृष्टि नहीं थी। गाँधी में यह दृष्टि अवश्य थी परन्तु गाँधी के शिष्यों ने ही गाँधीवाद को हाशिए पर डाल दिया। लेखिका ने दिखाया है कि आजादी के 40 वर्ष वाद देश की भ्रष्ट राजनीति ने हिन्दुस्तान के समाज का शोषण कर किस प्रकार एक लास बना दिया है। राजनेता, नौकरशाह, पुलिस व्यवस्था गिद्ध का रूप धारण कर उस समाज(जनतंत्र) रूपी लास को नोच–नोच कर खा रहे हैं। न्याय व्यवस्था किस प्रकार से पूंजीपतियों की रखैल बन गई है। इस तरह प्रजातंत्र के नाम पर गुण्डों और स्वार्थियों का राज कायम हो गया है। लेखिका ने इस उपन्यास में स्वधीनता के बाद उपजी इसी स्थिति का चित्रण किया है।

यह बदली हुई मानसिकता थी कि स्वाधीनता सेनानियों नें जिस सुंदर जीवन की कामना की थी। चालिस वर्षों बाद मोहभंग की स्थिति आ गई है। भारतीय जनतंत्र में चुनावी राजनीति का सच्चा रूप क्या है और उसके सहायक पुलिस तंत्र एवं अखबार की भुमिका को दिखाया गया है। यह उपन्यास दो पीढ़ियों का लक्ष्य–संघर्ष, बदली हुई मानसिकता और उससे उत्पन्न सोंच का उपन्यास है।

शहर से चालिस मील दूर सिरोहा नामक एक गाँव है। जिसमें मुख्य रूप से दो जाति के लोग 'हरिजन और जोरावर' रहते हैं। पूरे गाँव में जोरावरों का शासन कायम है। विशु उस गाँव का पढ़ा लिखा युवक है। वह हरिजनों को उनके अधिकारों के प्रति सजग करता है, उन्हें सरकारी रेट पर मजूरी करने के लिए कहता है। विशु की बात मानकर कुछ हरिजन विद्रोह करते हैं जिसके फलस्वरूप उनके घरों में आदमी सहित आग लगा दी जाती है। इस अमानवीय घटना की तहकीकात के रुप में दो कांस्टेबलों को सस्पैंड कर दिया जाता है। विशु किसी तरह जोरावरों के खिलाफ इस आगजनी की घटना का सबुत इकट्ठा करता है, परन्तु जोरावरों को इसका पता चल जाता है और छल से उसे जहर देकर मार दिया जाता है। यहीं से कथा का आरम्भ होता है।

लेखिका ने दिखाया है कि भारत की राजनीति शतरंज की बिसात बन कर रह गई है। वक्त से साथ कोई भी व्यक्ति या घटना महत्वपूर्ण हो जाती है। चुकी देढ़ महिने बाद ही इलेक्सन होने वाला है इसलिए सिरोहा में आज एक पत्ते का हिलना भी महत्वपूर्ण है। वरना क्या विशु और क्या विशु की मौत। विशु की मौत से सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों ही भरपुर फायदा उठाना चाहते हैं।

सत्ता पक्ष के नेता – दा साहेब

सत्ता पक्ष के नेता 'दा साहेब' गाँधी का दर्शन दिखातें हैं और हर समय गीता का अध्ययन करते हैं। परन्तु उनकी वास्तविकता है–धोती के नीचे धोती ही मिलेगी इस गीता बाँचने वाले की। खाल खींचने पर ही इनका नंगापन सामने आ सकता है। यह स्वाधीनता के बाद राजनेताओं का असली चरित्र है। दा साहेब ऐसे चरित्र हैं जिनके संरक्षण में जोरावर जैसे गुंडे पलते हैं, जिसका आतंक पूरे गाँव पर छाया रहता है।

गाँव के सभी लोग जानते हैं कि विशु का हत्या जोरावर ने की है, परन्तु कोई कहने का साहस नहीं कर पाता। एक मात्र यह साहस बिंदा ही कर पाता है। वह सक्सेना से कहता है–''ऐसा आतंक आपने कहीं नहीं देखा होगा साहब। लोगों के घर जमीन और गाय बैल ही रेहन नहीं रखे हुए हैं, जोरावर और सरपंच के यहाँ उनकी आवाज और जवान ता बन्धक रखी हुई है। कोई चुँ तक नहीं कर सकता।'' इसी के परिणामस्वरुप बिन्दा को ही विशु का हत्यारा साबित कर दिया जाता है।

Scanned by CamScanner

दा साहेब की राजनीति कितनी घटिया है यह उस समय पता चलता जब विपक्षी नेता सुकूल बाबू के बिरूद्ध जोरावर को चुनाव में खड़ा करते हैं। ऐसा वे इसलिए करते हैं कि वे अपने सामने सुकुल बाबू को नीचा दिखा सकें। लेकिन लोहिया का तश्वीर घर में लगाये रखने वाले एवं सच्चाई और न्याय की राग अलापने वाले दा साहेब के मंत्री मंडल में एक इमानदार व्यक्ति हैं लोचन बाबू। वे शिक्षा मंत्री हैं जो सच्चे इमानदार हैं। उन्हें दा साहेब का कार्य–कलाप अच्छा नहीं लगता। जब वे उसका विरोध करते हैं तो दा साहेब उन्हें मंत्रीमंडल से हटा देते हैं। राजनीति में एक इमानदार व्यक्ति की यही हालत होती है। दा साहेब कूटनीति में माहिर है। जब जोरावर..... चुनाव लड़ने से मना कर देता है तो दा साहेब कहते हैं आजकल पुलिस आपके बारे में पूछताछ कर रही है। ऐसा कहकर उसे सर उठाने नहीं देते और हमेशा अपना गुलाम बनाकर रखते हैं।

<u>पुलीस</u>

इन सब कार्यों में पुलिस भी दा साहेब की सहायता करती है। दा साहेब से प्रमोशन का आश्वासन पाकर डी. आई. जी. सिन्हा विशु की हत्या को आत्महत्या में बदल देते हैं और खानापुर्ती के लिए एक इमानदार आफिसर सक्सेना को गाँव भेज दिया जाता है। सक्सेना इमानदार एवं मेहनती आफिसर है। वह बड़ी लगन से किसी तरह विशु की हत्या का सबुत इकट्ठा करता है। दा साहेब पुलिस विज्ञान में इतने निपुन हैं कि असका पता उस समय चलता है जब वे डी. आई. जी सिन्हा से कहते हैं कि–घटना वाले दिन बिन्दा का गाँव में उपस्थित होना और घटना के बाद उसका अतिरिक्त रूप से रवैया; संदेह के लिए गुंजाइस नहीं रह जाती और बिन्दा को विशु का हत्यारा बना दिया जाता है।

इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि पुलिस व्यवस्था भी कितनी भ्रष्ट है। अपने स्वार्थ के लिए यह भी इस महाभोज में शामिल है। सिन्हा डी. आई. जी से आई. जी बना दिए जाते हैं और इमानदार सक्सेना सस्पेंड कर दिया जाता है। इस खुशी में वे एक शानदार पार्टी देते हैं। परन्तु किसी का ध्यान इस तरफ नहीं जाता कि सिन्हा की हैसियत का आदमी इतनी कीमती शराब कैसे पिला सकता है? लेखिका की टिप्पणी है–''कुछ बातें कुछ तथ्य प्रचालित होते–होते सबके बीच इस तरह की स्वीकृति लेती है।''

<u>जनतंत्र का दूसरा हिस्सा है विपक्ष</u>

जनतंत्र का दूसरा हिस्सा है विपक्ष, इसके नेता हैं **शुकुल बाबू।** शुकुल बाबू सत्ता के इतने लोभी हैं कि जब वे मुख्य मंत्री थे तो जो गलत कार्य वो खुद करते करवाते थे विपक्ष में जाने के बाद उसका बिरोध करते हैं। विशु की मौत मानो उनके सामने थाली में परस कर आ गया है। वे इसका भरपुर फयदा उठाना चाहते हैं। शुकुल जी सिरोहा जाकर काफी सहानुभूति दिखाते हैं और न्याय की माँग करते हैं। अपने घर में बैठे–बैठे यही सोच रहे हैं कि सभा में कौन–कौन सा मुद्दा उठाया जाय। कैसे–कैसे बातें कही जाय ताकि भाषण का सिधा असर पड़े और गाँव वालों की सहानुभूति प्राप्त हो जाय एवं हरिजनों तथा गाँववालों का वोट प्राप्त हो। वे दा साहेब के खिलाफ काफी कुछ कहते हैं। वे गाँववालों की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए विशु के पिता से मिलने उसके घर पर जाते हैं और उन्हें न्याय दिलाने की बात करते हैं। शुकुलबाबू का चरित्र कुछ अश्क जी का अधिकार के रक्षक के घनश्यामदास जैसा है जो बोलता कुछ और है और करता कुछ और। विशु की मौत की खबर सुनकर उल्लसित होना उसके चरित्र के वास्तविक पक्ष को उजागर करता है।

दा साहेब खुद जोरेरावरों के हाथों विशु की हत्या करवाते हैं और उससे सबका ध्यान हटाने के लिए घरेलु उद्योग योजना की चर्चा करवाते हैं। शुकुल बाबू की सभा में क्या–क्या चर्चा हुई कितनी भीड़ थी वे सब कुछ का खबर रखते हैं। उनकी सख्त हिदायत रहती है कि चुनाव या विशु की मौत को अहमियत न दी जाय। सिरोहा जाकर वे सीधा हीरा के घर जाते हैं, उसे अपनी गाड़ी में बिठाते हैं और घरेलु उद्योग योजना का उद्घाटन करवाते हैं। हीरा में मुँह से आह भी नहीं निकल पाती। वह कृतज्ञ हो उठता है। इतना बड़ा सम्मान उसे जीवन भर कभी नहीं मिला था। इस तरह विशु का मौत चार छः धरों में सिमट कर रह जाता है।

<u>मीडिया</u>

लोकतंत्र में मीडिया की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। मीडिया किसी भी व्यक्ति या पार्टी को चाहे तो क्षण में आसमान पर पहुँचा सकती है नहीं तो जमीन पर पटक सकती है। **'मशाल'** नामक अखबार जो कि आग उगलती है। इस अखबार के संपादक हैं **दत्ता साहेब।** अखबार से जो वाणी निकलती है सत्ता पक्ष और विपक्ष दोनों की नीव हिल जाती

Scanned by CamScanner

है। इस घटना को लेकर भी तरह तरह के लेख छप रहे थे। जनता को इस अखबार पर पूरा भरोशा था। मगर राजनीतिक चाल में दत्ता साहेब भी मात खा जाते हैं। दा साहेब उन्हें अपने यहाँ बुलाते हैं और उन्हें समझाते हैं एवं कागज का कोटा इतना बढ़ा देते हैं कि अगर दत्ता साहेब आधा कागज बेच भी दे तों साल भर की सामग्री बची रह जाएगी। दत्ता साहेब के जाते समय दा साहेब कहते हैं जरा सोंच समझकर लिखा कीजिए, जो सच हो बही लिखें। अगले दिन से आग उगलने वाली मशाल की वाणी बदल जाती है। वह भी विशु की हत्या को आत्महत्या बना देता है। इस उपन्यास में यह दिखाने का प्रयास है कि जनता का सबसे भरोसे मंद अखबार भी किस प्रकार से अपने स्वार्थों के लिए राजनीतिज्ञों के हाथों बिक जाता है।

वास्तव में आज की राजनीति अरेन्ज फैक्ट पर आधारित है। जो तथ्य दिखाते हैं वही सत्य नहीं होता। आज सच वह है जिसे प्रमाणित किया जाता है। कारण आज की न्याय व्यवस्था भी तथ्यता पर ही निर्भर करती है। सक्सेना इस निष्कर्ष पर पहूँचते हैं कि विशु का हत्यारा जोरावर है, यही सच भी था। परन्तु हत्यारा बिन्दा को ठहराया जाता है। प्रमोशन सक्सेना को मिलना चाहिए था क्योंकि उसने सत्यान्वेषण किया था परन्तु मिलता है सिन्हा को। यही आज की वास्तविकता है।

लेखिका का उद्देश्य इन पतनशील शक्तियों को दिखाना ही नहीं है। उन्होंने दिखाया है कि इस दौर में जहाँ तमाम पतनशील शक्तियाँ हैं वहीं प्रतिरोधी शक्तियाँ भी है। जहाँ अंधकार का प्रतीक दा साहेब, शुकुल बाबू, दत्ता साहेब, और सिन्हा जैसे लोग हैं वहीं उजाले की हल्की सी किरण के रूप में सक्सेना, रूक्मा, बिन्दा जैसे लोग भी हैं जो टूटते हैं परन्तु हार नहीं मानते। वे अपना अहसास दर्ज करा देते हैं। बिन्दा को जेल में बंद कर दिया जाता है, परन्तु उसके संघर्ष की चिंगारी को लेकर सक्सेना और रूक्मा आगे बढ़ते हैं। यह उपन्यास केवल निराशा का उपन्यास नहीं है और न भारत की राजनीतिक दूरावस्था पर आँसू बहाने के लिए लिखा गया है वल्कि अंतिम अवस्था तक लड़ने का उपन्यास है। जो सक्सेना और रूक्मा करते हैं। इस तरह यह उनन्यास जहाँ राजनीतिज्ञों, नौकरशाहों, दफ्तरशाहों के महाभोज को दर्शाता है वही यह मानवीय जीजिविशा को मरने नहीं देता । यही इस उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है।

0

Scanned by CamScanner